

कालिदास की रचनाओं में अहिंसा की अवधारणा

डा० रविशंकर मिश्र

कालिदास शैव थे,^१ तथापि उनकी रचनाओं के सम्यकालोचन से ऐसा प्रतिभासित होता है कि वे जैन धर्म की अहिंसावादी शिक्षाओं से काफी प्रभावित थे। इस तथ्य के प्रमाणस्वरूप उनकी रघुवंश, कुमारसम्भव, शाकुन्तल आदि रचनाएँ हमारे सामने हैं। जैन धर्म के सर्वप्रमुख सिद्धान्त-अहिंसा का उनके ग्रन्थों में पर्याप्त निदर्शन मिलता है। रघुवंश कालिदास का सर्वप्रमुख महाकाव्य है, जिसमें रघु-वंश का सम्पूर्ण इतिहास लिपिबद्ध है तथा जिसके प्रमुख नायक रघु हैं। अश्वमेध यज्ञ हेतु राजा दिलीप द्वारा छोड़े गये अश्व का देवराज इन्द्र द्वारा हरण कर लिये जाने पर कुमार रघु ने—जो उस अश्व के रक्षार्थ नियुक्त थे—उसे परास्त कर, उससे, अश्व को माँगा। परन्तु रघु के पराक्रम पर प्रसन्न इन्द्र ने, अश्व के अतिरिक्त अन्य कोई वर माँगने को कहा। इस पर रघु ने प्रार्थना करते हुए इन्द्र से कहा कि यदि आप यज्ञ का यह अश्व नहीं देना चाहते हैं तो मुझे ऐसा वर दीजिये कि मेरे पूज्य पिता को, बिना इस अश्व की बलि दिये^२ हिंसा किये ही, इस अश्वमेध यज्ञ का पूरा फल प्राप्त हो जाये—

अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो ततः समाप्ते विधिनैव कर्मणि ।

अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम् ॥^३

[हे प्रभु ! यदि आप अश्व को छोड़ने योग्य नहीं समझते तो निरन्तर यज्ञानुष्ठान में प्रयत्न-शील मेरे पिता, विधिपूर्वक इस यज्ञ की समाप्ति होने पर जो भी फल होता है, उसे पूर्ण रूप से प्राप्त करें ।]

इस प्रसङ्ग में कवि ने जहाँ कुमार रघु के अपार पराक्रम एवं विनयशीलता का बोध कराया है, वहीं क्या हम यह नहीं कह सकते कि शैव धर्मावलम्बी होते हुए भी कवि इन यज्ञों में होने वाली

१. (क) संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय (भाग प्रथम), पृ० १४५.
 - (ख) संस्कृत साहित्य का इतिहास : ए० बी० कौथ, हिन्दी भाषान्तरकार : मंगलदेव शास्त्री, पृ० १२२-१२३.
 - (ग) महाकवि कालिदास : डा० रमाशंकर तिवारी, पृ० ६३.
 - (घ) भारती कवि विमर्श : पं० रामसेवक पाण्डेय, पृ० ११.
२. ज्ञातव्य है कि इस आश्वमेधिक अश्व की यज्ञ में बलि दे दी जाती है—शतपथब्राह्मण, १३/१-५; इसके अतिरिक्त तैत्तिरीयब्राह्मण, ३/८-९; कात्यायनीय श्रौतसूत्र, २०; आपस्तम्ब, आश्वलायन (२०; १०/६) आदि में भी।
 ३. रघुवंश : महाकवि कालिदास, ३/६५।

निरीह पशुओं की निर्मम हत्या का प्रबल विरोधी था। शायद कवि की इसी अहिंसात्मक-भावना के परिणाम-स्वरूप इस प्रसङ्ग में नायक की प्रतिष्ठा के साथ ही हमें अहिंसा के प्रति उसका अपार प्रभाव प्रतिभासित होता है। एक अन्य प्रसङ्ग में राजा दिलीप महर्षि वशिष्ठ द्वारा प्रदत्त नन्दिनी धेनु की रक्षार्थ अपने शरीर को सिंह के समक्ष प्रस्तुत करने को उद्यत मिलते हैं—

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद ।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः ॥^१

[चूँकि आप अपने समीप आने वाले प्राणियों से अपनी जीविका का निर्वाह करते हैं, अतः मेरे शरीर से अपने जीवन की रक्षा कीजिये और दिन के समाप्त होने पर उत्कण्ठित छोटे बछड़े वाली महर्षि की इस धेनु को छोड़ दीजिये ।]

इस प्रसङ्ग के पीछे कवि की अहिंसाप्रधान नीति ही प्रमुख रही है, तभी तो उसने भगवान् शङ्कर के सिंहरूपधारी उस अनुचर की हिंसा करने को उद्यत राजा दिलीप के हाथ को उनके तूणीर में रखे हुए बाणों में विद्ध करवा दिया।^२ इस प्रसङ्ग की प्रस्तुति के पीछे ध्यातव्य यह है कि कवि ने अपनी अहिंसाप्रधान नीति पर विशेष बल देने हेतु बलात् ही इस प्रसङ्ग को काव्य में जोड़ने का प्रयास किया है; अन्यथा उसके समक्ष अन्य ऐसा कौन सा कारण हो सकता था, जिसके लिए सिंह की हिंसा के लिए उद्यत राजा दिलीप के हाथ को वह तूणीर में विद्ध करवाता।

एक अन्य प्रसङ्ग में हम देखते हैं कि राजा रघु के पुत्र कुमार अज एक स्वयंवर में भाग लेने हेतु विदर्भ देश जा रहे हैं। मार्ग में उनके एक पड़ाव पर एक जङ्गली हाथी उन पर आक्रमण कर देता। इस पर 'हाथी मर न जाय' इसका ध्यान रखते हुए कुमार अज ने उस हाथी को मात्र भयभीत करने के उद्देश्य से, उस पर एक साधारण बाण छोड़ दिया—

तमापतन्तं नृपतेरवधो वन्यः करीति श्रुतवान्कुमारः ।
निवर्तयिष्यन्विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः ॥^३

[जङ्गली हाथी राजा के लिए अवध्य होता है—यह बात कुमार अज को शास्त्रों द्वारा ज्ञात थी, अतः उन्होंने उसे आगे न बढ़ने देने की इच्छा से अपने धनुष को थोड़ा ही खींचकर एक बाण से उसके मस्तक पर आघात किया ।]

बाण लगने मात्र से वह जङ्गली हाथी अपने हाथी के उस रूप को छोड़कर गगनचारी गन्धर्व का मनोहर रूप धारण कर कुमार अज के सम्मुख उपस्थित हुआ और बोला कि मैं प्रियम्बद नामक गन्धर्व हूँ, अपने गर्व के कारण मैंने मतङ्ग ऋषि के शाप द्वारा गजयोनि को प्राप्त कर लिया था।^४ उसने आगे कहा—

१. रघुवंश : महाकवि कालिदास, २।४५ ।

२. वही, २।३१ ।

३. वही, ५।५० ।

४. रघुवंश : महाकवि कालिदास, ५।५३ ।

संमोहनं नाम सखे ममास्त्रं प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम् ।
गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुर्न चारिर्हिंसा विजयश्च हस्ते ॥
अलं ह्लिया मां प्रति यन्मुहूर्तं दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम् ।
तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं मयि त्वया न प्रतिषेधरौक्ष्यम् ॥^१

[तुमने अपने क्षात्र-धर्म का पालन करते हुए भी अपने दया-धर्म को नहीं छोड़ा और मेरे प्राण नहीं लिये, अतः मैं आज से तुम्हारा मित्र हूँ और अपनी इस मित्रता को चिरस्मरणीय बनाने हेतु मैं आपको यह एक ऐसा सम्मोहन अस्त्र प्रदान कर रहा हूँ, जिसके द्वारा इसके प्रयोक्ता को अपने शत्रु की हिंसा नहीं करनी पड़ती और उसे शत्रु पर विजय भी प्राप्त हो जाती है ।]

इस प्रसङ्ग में भी कवि की अहिंसाप्रधान नीति का ही आभास होता है । क्योंकि शत्रु की बिना हिंसा किये ही उस पर विजय प्राप्त कर लेना सामान्यतया तो असम्भव ही होता है, अतः ऐसी स्थिति में भी कवि द्वारा ऐसे प्रसङ्ग का प्रस्तुतीकरण सहजतया कवि के अहिंसा-सिद्धान्त का ही परिपोषक सिद्ध होता है । आगे इसी प्रसङ्ग में हम देखते हैं कि अज ने रणभूमि में अपने शत्रुओं पर उसी सम्मोहन अस्त्र का प्रयोग कर, बिना शत्रुओं की हिंसा किये ही उन पर विजय भी प्राप्त की ।^२

उपर्युक्त प्रसङ्ग महाकवि की प्राणिमात्र के प्रति दयालुता व उत्कृष्ट अहिंसात्मक भावना के ही द्योतक/प्रस्तोता हैं । उन्होंने पदे-पदे अहिंसा की महिमा का हाथ उठाकर बखान किया है, तभी तो इसी काव्य में आगे उन्होंने राजा दशरथ की उस आखेट-क्रीड़ा की निन्दा की हैं, जो श्रवण-कुमार की हिंसा का कारण बनी थी—

नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पङ्क्तिरथो विलङ्घ्य यत् ।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ॥^३

[जङ्गली हाथी को मारना राजा के लिए निषिद्ध था, किन्तु राजा ने उसका उल्लङ्घन किया । सच है, विद्वान् पुरुष भी राजसी गुणों से अभिभूत होकर अनुचित मार्ग पर पदार्पण कर बैठते हैं ।]

इस प्रसङ्ग को आधार बनाकर कहा जा सकता है कि जब राजा के लिए गज-हिंसा सर्वथा वर्जित थी, तब उसने गज-शब्द के भ्रम में ही सही पर उसकी हिंसा के निमित्त बाण क्यों चलाया ? क्या काव्य की अपनी पूर्णता की ओर क्रमशः पहुँचते-पहुँचते कवि का अहिंसात्मक भावना-ज्वार में शिथिलता आ गयी थी ? पर नहीं जहाँ तक मेरा विचार है कि इस प्रसङ्ग द्वारा कवि को यही दर्शाना अभिप्रेत था कि अनजाने में भी कभी किसी की हिंसा के प्रति मन में विचार तक भी नहीं लाना चाहिए और सम्भवतः इसी विचार के फलस्वरूप कवि ने श्रवणकुमार की हिंसा का प्रसङ्ग उपस्थित किया ।

१. वही, ५।५७-५८ ।

२. वही, ५।६५ ।

३. रघुवंश : महाकवि कालिदास, ९।७४ ।

कवि की दृष्टि में आखेट सर्वथा निन्दनीय कार्य रहा है, तभी तो उसने अभिज्ञान-शाकुन्तल में माधव्य के मुख से आखेट की निन्दा करते हुए इसको (आखेट-वृत्ति को) बहेलिया (चिड़ीमार) आदि निम्न व्यक्तियों की वृत्ति कहा है—

युक्तं नामेवं, यतस्त्वया राजकार्याणि उज्जित्वा तादृशमस्खलितपदं प्रदेशञ्च वनचरवृत्तिना भवितव्यमिति ॥^१

माधव्य के इस कथन से अभिभूत होकर राजा दुष्यन्त का अपनी शिकार-यात्रा का उत्साह मन्द हो गया, तभी वह सेनापति भद्रसेन से कहता है—भद्रसेन ! भग्नोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयाप-वादिना माधव्येन^२—अर्थात् भद्रसेन ! शिकार की निन्दा करने वाले माधव्य ने मेरे उत्साह को मन्द कर दिया है ।

इसी ग्रन्थ के छठे अङ्क में धीवर की मत्स्य-हिंसा आदि कार्यों को गर्ह्य सिद्ध करते हुए कवि ने उसे अति हेय स्थान दिया है, तभी तो नागरक (थानाध्यक्ष) धीवर की व्यङ्ग्य रूप में जो प्रशंसा करता है, उससे उसके हिंसा-कर्म को निन्दा ही ध्वनित होती है—(विहस्य) विशुद्ध इदानीमा आजीवः^३—

अर्थात् (हँसकर) इसकी आजीविका तो पवित्र है । इस व्यङ्ग्योक्ति के उत्तर में अपनी मत्स्य-हिंसा-वृत्ति के समर्थन में धीवर कहता है—

सहजं किल यद्विनिन्दितं न तु तत् कर्म विवर्जनीयकम् ।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुकोऽपि श्रोत्रियः ॥^४

अर्थात् निन्दित होता हुआ भी जो कर्म स्वाभाविक (वंशपरम्परागत) है, उसे नहीं छोड़ना चाहिए । दया से कोमल (हृदय) होता हुआ भी वैदिक ब्राह्मण यज्ञ में पशु-हिंसारूपी कर्म से क्रूर हो जाता है । परन्तु धीवर के इस व्यङ्ग्य रूप कथन से स्पष्ट होता है कि यज्ञ में पशु-हिंसा करने वाले इन श्रोत्रिय ब्राह्मणों को भी कवि ने निन्दनीय दृष्टि से ही देखा है ।

यहाँ हम इस तथ्य को तो अस्वीकार नहीं कर सकते कि तत्कालीन समाज में आखेट-क्रीड़ा और यज्ञादि में पशु-हिंसा प्रचलित थी, परन्तु अनेक प्रसङ्गों के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कम से कम महाकवि को ऐसी हिंसा रूचिकर न थी और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि महाकवि की इस अहिंसा—विश्व के प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और कष्टम की भावना—के अन्तस्म में जैन धर्म का ही किञ्चित् प्रभाव अन्तर्निहित हो ।

जैन धर्म में परमाराध्य एवं अहिंसा के सिद्धान्त के प्रतिपादक 'अरहंत' का स्थान सर्वोपरि है । इसी कारण जैन धर्म के अनादिनिघन मन्त्र में सर्व प्रथम इन्हें ही नमस्कार किया गया है ।^५

१. अभिज्ञानशाकुन्तल : महाकवि कालिदास, २।२ ।
२. अभिज्ञानशाकुन्तल : महाकवि कालिदास, २।४ ।
३. वही, ५।१ (अङ्कावतार) ।
४. वही, ५।१ (अङ्कावतार) ।
५. णमो अरिहंतानं ।

अरहंत शब्द प्राकृत का है, इसका संस्कृत रूप है—अर्हत्-अर्हन् । महाकवि ने जैन धर्म के इस आराध्य अर्हत् और अर्हन् शब्द का अपनी रचनाओं में अनेकशः श्रद्धापूर्वक प्रयोग किया है । रघुवंश के प्रथम सर्ग में कवि ने 'नयचक्षुषे' विशेषण के साथ मुनियों के लिए अर्हत् शब्द का प्रयोग किया है, जिसके आधार पर सम्भवतः उन्होंने अर्हत् अर्थात् मुनि के नयों के ज्ञातृत्व की ओर सङ्केत किया है—

तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः ।
अर्हणामर्हते चक्रुर्मनयो नयचक्षुषे^१ ॥

पञ्चम सर्ग में कवि ने ऋषि कौत्स की पूजनीयता-पवित्रता आदि के कथा-प्रसङ्ग में राजा रघु के मुख से 'अर्हत्' शब्द कहलवाया है—

तवार्हतो नाभिगमेन तृप्तं मनो नियोगक्रियतोत्सुकं मे ।
अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा प्राप्तोऽसि सम्भावयितुं वनान्माम्^२ ॥

आगे इसी सर्ग में राजा रघु ने ऋषि कौत्स के आदरसूचक सम्बोधनस्वरूप 'हे अर्हन्' शब्द प्रयुक्त किया है—

स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थाऽग्निरिवाग्न्यगारे ।
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्यावचते साधयितुं त्वदर्थम्^३ ॥

इसी प्रकार कुमारसम्भव में भी कवि ने महनीय जनों के कथन-प्रसङ्ग में 'अर्हत्' शब्द प्रयुक्त किया है—

अद्यप्रभृति भूतानामधिगम्योऽस्मि शुद्धये ।
यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते^४ ॥

इन सन्दर्भों के आधार पर हम कह सकते हैं कि महाकवि ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र अर्हत्-अर्हन् शब्द का प्रयोग प्रायः ऋषि-मुनियों के लिए ही किया है, जो पूजनीय, महनीय एवं पवित्रता के अन्यतम साधक होते थे । इधर जैन धर्म में भी यह अर्हत्-अर्हन् शब्द उन तीर्थंकरों के लिए ही प्रयुक्त मिलता है, जो जैन धर्म के तत्त्वदृष्टा अन्यतम पूजनीय एवं महनीय साधक होते हैं । तो क्या यह सम्भव नहीं कि कवि ने अपनी रचनाओं में इस शब्द का प्रयोग जैन धर्म के अर्हत्-तीर्थंकरों की पूजनीयता, महनीयता एवं पवित्रता से प्रभावित होकर ही किया हो ? यहाँ यह कथन कोई निश्चित तो नहीं है, फिर भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि महाकवि अहिंसानुरागी थे तथा जैन-धर्म-दर्शन के मौलिकसिद्धान्तों के प्रति उनका अगाध विश्वास एवं आदर भाव था । तभी

१. रघुवंश : महाकवि कालिदास, १/५५ ।
२. वही, ५/११ ।
३. वही, ५/२५ ।
४. कुमारसम्भव : महाकवि कालिदास, ६/५६ ।

तो कुमारसम्भव में पार्वती की जिस कठिन तपस्या^१ का तथा रघुवंश में राजा अज के आमरण उपवास के साथ उनके शरीर-त्याग^२ का जो हृदयहारी वर्णन कवि ने किया है, वह सहजतया हमें जैन धर्म में प्रतिपादित सम्यक्-तप और सल्लेखना-समाधिमरण की स्मृति कराता मिलता है।

जैन धर्म एवं उसकी अहिंसा की अवधारणा के प्रति महाकवि के इस अगाध विश्वास और आदर भाव का कारण भी स्पष्ट ही है। महाकवि के समय में जैन धर्म का पर्याप्त प्रभाव था। वह हिंसाप्रधान यज्ञादिकों का विरोधी था और अहिंसा, सत्य, तप, अस्तेय और अपरिग्रह पर विशेष बल देते हुए उस युग की बुराइयों को सुधारने का प्रयत्न कर रहा था। इसी के फलस्वरूप यह धर्म समाज में समादरणीय स्थान प्राप्त कर सका। सम्भवतः यही कारण रहा होगा कि जैन धर्म के अहिंसा, अनेकांत, आत्मोत्सर्ग के आदर्शों के अवलोकनोपरान्त महाकवि भी इस धर्म के प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सके।

सम्पादक, भाषा विभाग,
पुराना सचिवालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)

-
१. कुमारसम्भव : महाकवि कालिदास, ५/२ ।
 २. रघुवंश : महाकवि कालिदास, ८/९४-९५ ।